Toppersnotes
Unleash the topper in you

UGC-NET

समाजशास्त्र

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर - 2 || भाग - 2

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET

समाजशास्त्र

विषय-सूची

Unit - 4		Page No.
1.	ग्रामीण एवं खेतिहर समाज की अवधारणा	1
2.	नगरीय समाज की अवधारणा	8
Unit – 5		
1.	भारत में राजनैतिक प्रक्रियाएँ	18
2.	राजनीतिक संस्कृति, जनजाति, तृणमूल प्रजातन्त्र एवं भ्रष्टाचार	48
3.	अन्तर्राष्ट्रीय विकास संगठनों की भूमिका	77
4.	लोकनीति, स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविकाएँ तथा लिंग और विकास	120
5.	सामाजिक आन्दोलन एवं विरोध	165
6.	दबाब गुट या समूह	175
7.	नागरिक समाज	207
8.	गैर सरकारी संगठन, सक्रियतावाद और नेतृत्वआरक्षण और राजनीति	215
Unit – 6		
1.	आर्थिक व्यवस्था	232
2.	अर्थव्यस्था का विकास	240
3.	आधुनिक आर्थिक व्यवस्थाएँ	245
4.	औद्योगिकीकरण	260
5.	डिजिटल अर्थव्यवस्था एवं ई–वाणिज्य	272
6.	विनिमय, उत्पादन की विधियाँ और सम्पति	285
7.	राज्य और बाजार – कल्याणवाद और नव उदारवाद	309
8.	आर्थिक विकास की अवधारणा	313

Unit - 4

ग्रामीण एवं खेतिहर समाज की अवधारणा
(Concept of Rural and Peasant Society)

ग्राम या गाँव मानव के सामूहिक जीवन का प्रथम पालना माना गया है । मानव ने सबसे पहले जब सामूहिक रूप से रहना प्रारम्भ किया, तो गाँव ही उसका निवास स्थान रहा । संसार की अधिकांश जनसंख्या आरम्भ से लेकर अन्त तक ग्रामों में ही बसी है । इस प्रकार मानव समाज एवं सभ्यता हजारों वर्ष से ही ग्रामीण रही है । नगरीय जीवन तो पिछली कुछ शताब्दियों की देन है । लॉरी नेल्सन (Lowry Nelson : Rural Sociology) लिखते हैं, अभी थोडे समय पूर्व तक के मनुष्य की कहानी अधिकांशतः ग्रामीण मनुष्य की ही कहानी है । वह समाज जहाँ अपेक्षाकृत अधिक समानता, अनौपचारिकता, प्राथमिक समूहों की प्रधानता, जनसंख्या का कम घनत्व तथा कृषि या खेती ही मुख्य व्यवसाय हो, उसे ग्रामीण समुदाय कहते हैं । यद्यपि इनका मुख्य व्यवसाय कृषि ही होती है, जिसके कारण इन्हें खेतिहर समाज भी कहा जाता है । इसके अतिरिक्त ग्रामीण समाज को ग्रामीण समुदाय भी पुकारा जाता है ।

ग्रामीण समुदाय (Rural Community)

मानव जीवन का सबसे प्राचीन स्थान गाँव या ग्राम अथवा ग्रामीण समुदाय है । गाँव का उद्भव या विकास किस प्रकार हुआ, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गाँव मनुष्य के जीवन में अति प्राचीनकाल से विद्यमान है ।

जाति व्यवस्था (Caste system)

जाति पुर्तगाली शब्द 'Caste' से बना हआ है. जिसका शाब्दिक अर्थ प्रजाति, नस्ल या जन्म से लिया जाता है । लैटिन भाषा शब्द 'Castus' विशुद्ध, आनुवंशिक, जाति शब्द संस्कृत भाषा के जाति से बना है, जिसका अर्थ होता है – जन्मा ।

ग्रेरिया-डि-ओरेटा ने सर्वप्रथम 1665 ई. में इस शब्द की उत्पत्ति का पता लगाया तथा इस शब्द का प्रयोग भारत के उन लोगों के लिए किया, जिसे जाति के नाम से पुकारा जाता है । बाद में फ्रांस के अब्बेडबॉय ने इस शब्द का प्रयोग प्रजाति के सन्दर्भ में किया । लेकिन सर्वप्रथम जाति पर व्यवस्थित कार्य जी एस घुरिये द्वारा किया गया और इन्होंने बताया कि जाति इण्डो-आर्यन संस्कृतियों के मिश्रण का बच्चा है, जो गंगा-यमुना के दोआब में जन्मा, पला, बढा और यही से पूरे भारत में फैलाया गया ।

जी एस घुरिये के अनुसार, जाति से तात्पर्य एक ऐसे संवर्ग से है जिसकी सदस्यता जन्मजात होती है और प्रत्येक जाति का एक नाम और उनकी अपनी एक जीवन-शैली होती है और आपस में भोजन एवं सहवास पर प्रतिबन्ध रखते हैं । साथ-ही-साथ जाति एक अन्तः विवाही परिवारों का एक समूह है, जो शुद्ध-अशुद्ध के विचारों को मानता है । इसलिए लुइस ड्यूमा ने जाति का मुख्याधार केवल पवित्रता और अपवित्रता को माना है ।

जनजातीय–व्यवस्था (**Tribes System**)

वह सामाजिक समुदाय जो राज्य के विकास के पूर्व अस्तित्व में था या जो अब भी राज्य के बाहर (मुख्यधारा से) हैं, जनजाति कहलाती हैं । जनजाति वास्तव में भारत के आदिवासियों के लिए प्रयुक्त होने वाला एक वैधानिक पद है । भारत के संविधान में अनुसूचित जनजाति पद का प्रयोग हुआ है और इनके लिए विशेष प्रावधान लागू किए गए हैं ।

जनजाति की परिभाषाएँ

गोत्र के एक विस्तृत स्वरूप को जनजाति कहा जाता है । ये खानाबदोशी जत्थे, झुण्ड, गोत्र, भ्रातृदल के रूप में संगठित होते हैं । जनजातियों को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, अनुसूचित जनजाति आदि नामों से भी पुकारा जाता है । जनजाति की परिभाषा को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है

- गिलिन एवं गिलिन लिखते हैं, स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, जनजाति कहते हैं ।
- डॉ. मजूमदार लिखते हैं, एक जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का संकलन होती है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू–भाग में रहते हैं, समान भाषा बोलते है और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक नियमों का पालन करते है और पारस्परिक कर्तव्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते हैं ।
- इम्पीरियल गजेटर ऑफ इण्डिया के अनुसार, एक जनजाति परिवारों का एक संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जो एक बोली बोलते हैं, एक सामान्य भू–भाग पर अधिकार रखते है और प्रायः अन्तर्विवाह नहीं करते है ।

जाति–जनजाति बस्तियाँ (**Caste-Tribes Settlement**)

मानव निवास के स्थानों को विद्वानों ने उनकी जनसंख्या, मकानों की बनावटें, प्रशासन तथा वैधानिक एवं सरकारी आधार पर कई भागों में विभक्त किया है जिनमें पुरवा, गाँव, कस्बा, नगर, महानगर, मेगापोलिस, प्रदेश या क्षेत्र, आदि प्रमुख हैं ।

बस्तियों की विशेषताएँ

ग्रामीण बस्तियों की विशेषताओं को हम ग्रामीण जीवन का अंग कह सकते हैं । इन विशेषताओं के आधार पर ही ग्रामों को पहचाना और नगरों से पृथक् किया जा सकता है ।

- जीवनयापन प्रकृति पर निर्भर गाँव के लोगों का जीवन कृषि, पशुपालन, शिकार, मछली पकडने एवं भोजन संग्रह करने आदि की क्रियाओं पर निर्भर है । कृषि ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय है । इन सभी कार्यों के लिए व्यक्ति को प्रकृति के प्रत्यक्ष और निकट सम्पर्क में रहना होता है । भूमि, मौसम, जंगल सभी प्रकृति के ही अंग हैं । मौसम के अनुरूप व्यक्ति अपने को ढालता है और व्यवसाय की प्रकृति को प्रभावित करने में प्राकृतिक कारकों का महत्वपूर्ण हाथ होता है । वर्षा, सर्दी, गर्मी, आदि भी कृषि को प्रभावित करते हैं ।

- प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता गाँवों का आकार छोटा होने से प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानता है । उनमें निकट, प्रत्यक्ष और घनिष्ट सम्बन्ध होते हैं । ऐसे सम्बन्धों का आधार परिवार, पडोस और नातेदारी है । ग्राम में औपचारिक सम्बन्धों का अभाव होता है । वे कृत्रिमता से दूर होते हैं तथा उनमें पारस्परिक सहयोग एवं प्राथमिक नियन्त्रण पाया जाता है ।
- सामुदायिक भावना ग्राम शहर की अपेक्षा छोटा होता है, अतः वहाँ के लोगों में अपने गाँव के प्रति लगाव और सभी में हम की भावना पाई जाती है ।
- संयुक्त परिवार भारतीय गाँवों की विशेषता संयुक्त परिवार की प्रधानता है । यहाँ पति-पत्नी व बच्चों के परिवार की तुलना में ऐसे परिवार अधिक पाए जाते हैं, जिनमें तीन या अधिक पीढ़ियों के सदस्य एकसाथ रहते हैं ।
- जाति-प्रथा जाति-प्रथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता है । जाति के आधार पर गाँवों में सामाजिक संस्तरण पाया जाता है । जाति को एक सामाजिक संस्था कहा जाता है । जाति की सदस्यता जन्म से निर्धारित होती है । प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है । जाति के सदस्य अपनी ही जाति में विवाह करते हैं । जाति अपने सदस्यों के लिए खान-पान एवं सामाजिक सहवास के नियम बनाती है । जाति-व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान ब्राह्मणों का और सबसे नीचा स्थान अस्पृश्य जातियों का है । इन दोनों के बीच क्षत्रिय और वैश्य जातियाँ है । जातियों के बीच परस्पर भेद-भाव और छुआछूत की भावना पाई जाती है ।

कृषक सामाजिक संरचना और उभरते वर्ग सम्बन्ध

(Agrarian Social Structure and Emergent Class Relation)

परम्परागत भारतीय सामाजिक संरचना की व्याख्या उन संस्थाओं द्वारा की जाती रही है, जो जन्म पर आधारित होती है; जैसे परिवार, वंश परम्परा, उपजाति और जाति । एक दूसरा तरीका सामाजिक संरचना की व्याख्या करने का है-वर्ग के द्वारा । इसकी दो अवधारणाएँ है

1. सामाजिक संरचना के विवरण का वर्ग व्यवस्था ज्यादा उचित आधार है ।
2. संरचना के विवरण के लिए जाति और वर्ग दोनों ही जरूरी है ।

के एल शर्मा लिखते है, जाति अपने भीतर वर्ग तत्व समाहित किए हुए है तथा वर्ग की अपनी सांस्कृतिक (जाति विषयक) जीवन रीति है । अतः विश्लेषण के लिए भी दोनों प्रणालियों को अलग नहीं किया जा सकता ।

भू-स्वामित्व और कृषक सम्बन्ध (Land Ownership and Agrarian Relation)

भारत कृषकों का देश कहा जाता है । कृषि सम्बन्धी संस्थाओं की ओर ध्यान देने पर कृषक एवं कृषि से सम्बन्धित अनेक पक्षों की ओर हमारा ध्यान जाता है । जब हम कृषि क्षेत्र में पारिवारिक श्रम, वेतनभोगी श्रम तथा काश्तकारी या बटाईदारी पर आधारित उत्पादन पर ध्यान देते है, तो हमारी दृष्टि स्वतः ही भू-स्वामी खेतिहर लोगों, काश्तकारों, बटाईदारों एवं कृषि श्रमिकों की ओर जाती है । विभिन्न आकार के खेतों के स्वामित्व अथवा उन्हें किराए पर जोतने या उन पर वेतनभोगी श्रमिकों के रूप में कार्य के आधार पर लोगों को अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत किया गया है ।

भू-स्वामित्व का अर्थ

किसी भी देश में कृषक सम्बन्धों की प्रकृति वहाँ की भूमि व्यवस्था पर निर्भर है । जिस प्रकार की भूमि व्यवस्था या भू-स्वामित्व होता है, कृषि में संलग्न व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध भी उसी के अनुरूप होते हैं । भू-स्वामित्व या भूमि व्यवस्था से तात्पर्य उस व्यवस्था से है, जिसमें अनलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है ढ भूमि के स्वामी, भूमि को जोतने वाले का भूमि के प्रति कर्त्तव्य, अधिकार एवं दायित्व, मालगुजारी देने के लिए राज्य से सम्बन्ध की व्याख्या आदि ।

दूसरे शब्दों में, भूमि पर स्थायी स्वामित्व अधिकार किस व्यक्ति का है? उस पर खेती वास्तव में कौन करता है तथा उस भूमि पर लगान निर्धारित करने की रीति क्या है ? ये तीनों बातें मिलकर भूमि व्यवस्था को बताती हैं अर्थात भमि व्यवस्था या भ-स्वामित्व से अभिप्राय उस व्यवस्था से है जिसके अनुसार भूमि का स्वामित्व, अधिकार एवं दायित्व निर्धारित किए जाते हैं ।

एक आदर्श भूमि की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें निम्नलिखित गुण विद्यमान हों

- भूमि पर जोतने वाले का स्वामित्व होना चाहिए ।
- लगान उचित मात्रा में लिया जाना चाहिए ।
- भूमि के हस्तान्तरण की स्वतन्त्र व्यवस्था होनी चाहिए ।
- जोतों की सीमा निर्धारित होनी चाहिए ।

कृषक अर्थव्यवस्था का ह्रास (**Decline of Agrarian Economy**)

भारतीय अर्थव्यवस्था मूलतरू ग्रामीण और कृषि प्रधान है । देश के सर्वांगीण विकास (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक) में कृषि अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । भारत को गाँवों का देश कहा जाता है, क्योंकि यहाँ पर कुल जनसंख्या का लगभग 70% गाँवों में निवास करता है और उनका मुख्य व्यवसाय कृषि है । जहाँ तक भारतीय कृषक अर्थव्यवस्था के ह्रास का प्रश्न है, तो इसके ऐतिहासिक कारणों को जानना आवश्यक होगा । भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद यहाँ पर जमींदारी व्यवस्था, रैयतवाडी व्यवस्था, महालवाडी व्यवस्था तथा कृषि के वाणिज्यीकरण के माध्यम से ब्रिटेन की आवश्यकता के अनुसार संचालन किया गया जैसे परम्परागत भारतीय कृषि की जगह नकदी फसल (व्यावसायिक फसल) बोने के लिए बाध्य किया गया । अंग्रेजों की आर्थिक नीति का परिणाम यह हुआ कि भारतीय कृषक अर्थव्यवस्था में ह्रास का दौर चल पडा । भूमि बन्दोबस्त के माध्यम से जमीन को हस्तान्तरणीय बनाकर महाजन और अमीर किसान को जमीन हथियाने में सामर्थ्य बना दिया गया । इस व्यवस्था से धीरे-धीरे ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढती चली गई । जमीन के उपविभाजन तथा अपखण्डन ने कृषि को हतोत्साहित किया । दरिद्रता तथा संसाधनों की कमी के कारण कृषक उन्नत बीज, खादों के प्रयोग में असमर्थ हो गए ।

भारतीय हस्तशिल्प उद्योग के पतन के कारण भारतीय कृषि पर जनसंख्या का दबाव बढ गया । अत्यधिक भू-राजस्व निर्धारण, कृषि की गतिहीनता ने भारतीय कृषकों को ऋणग्रस्तता के जाल में ढकेल दिया (फँसा दिया) । इस प्रकार भारतीय कृषक अर्थव्यवस्था में ऋणग्रस्तता के कारण ह्रास बढता गया ।

विकृषिकरण (गैर किसानीकरण) (**De-Peasantization**)

भूमि, कृषि उत्पादन का प्रमुख माध्यम है । यहाँ भूमि पर वर्तमान में सामान्यतः पारिवारिक अथवा वैयक्तिक स्वामित्व पाया जाता है । किसी परिवार के पास सैकडों एकड भूमि है, तो किसी परिवार के पास एक–दो एकड ही जमीन है । जिस परिवार के पास एक या दो एकड जमीन है, इस स्थिति में जब कोई परिवार विभाजित होता है, तो उस परिवार की भूमि बँट जाती है और इस प्रकार से दोबारा परिवार विभाजन होने पर भूमि का भाग या तो बँट जाता है या किसी एक के पास रह जाता है, तो शेष सदस्यों को भूमि से वंचित होना पडता है, ऐसी स्थिति में वे किसान से गैर– किसान बन जाते है । ऐसे लोगों को कृषि क्षेत्र में भूमिहीन श्रमिकों के रूप में या अन्य किसी स्थान पर जाकर कार्य करने के लिए बाध्य होना पडता है ।

सीमान्त किसान तथा छोटे किसान भी भूमि के और अधिक विभाजन और विखण्डन से बाद में गैर–किसानीकरण प्रक्रिया के शिकार हो जाते है और इन्हें भी भूमिहीन श्रमिक होकर या अन्य किसी स्थान पर जाकर कल–कारखाने में कार्य करना पडता है । इसके अतिरिक्त जिन लोगों के पास ज्यादा उपजाऊ जमीन नहीं है और जिनके पास खाद–बीज और बैल, कषि के उन्नत उपकरण आदि की व्यवस्था नहीं है, उन्हें भी बाद में गैर–किसानीकरण का सामना करना पडता है तथा ऐसे किसान विवशतः अपनी जमीन किसी बडे जमींदार को बेच देते है और स्वयं मजदूरों की स्थिति में आ जाते है ।

मानव प्रवास या प्रवसन (**Human Migration**)

मनुष्य जब अपने निवास को परिवर्तित करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करता है, तो उसे प्रवास कहा जाता है । लोगों के अपने पशुओं के समूहों मौसमानुसार पर्वतों के ऊपर और नीचे प्रवास करने को ट्रांस ह्यूमेन्स कहा जाता है । प्रवास का वर्गीकरण दूरी, स्थान तथा दिशा के आधार पर किया जाता है । किसी देश से दूसरे देश में लोगों के आने को अप्रवास (इमीग्रेशन) तथा जाने को प्रवास गमन कहते है । मानव प्रवास के सन्दर्भ में रैवन्स्टीन के प्रवासन नियम तथा ली की प्रवास सम्बन्धी संकल्पना प्रमुख है ।

प्रवास को प्रभावित करने वाले कारक

प्रवास को प्रभावित करने वाले निम्न कारक है

- आर्थिक कारण जैसे–भारत से अमेरिका के सिलिकन्हन वैली तथा पूर्व के देशों में प्रवास ।
- धार्मिक कारण यहूदियों का इजरायल की ओर प्रवास, धामिक प्रचार के लिए पिलग्रिम फादर का यूरोप से अमेरिका की ओर प्रवास ।
- राजनैतिक कारण जैसे–भारत विभाजन के समय लोगों का बडे पैमाने पर दोनों देशों के बीच वितरण । वियतनाम में 1970 के दशक में चीनी मूल के कई लोगों को नाव में भरकर जबरदस्ती निष्कासित कर दिया गया था । इन्हें बोट पीपुल (Boat People) कहा जाता है । प्रवसन ऐच्छिक एवं बलात भी हो सकता है । स्वतन्त्रता से पहले मॉरीशस तथा फिजी जैसे देशों में बिहार व उत्तर प्रदेश में बडे पैमाने पर श्रमिकों का प्रवास हुआ ।

भारत में प्रवास

भारतीय जनगणना विभाग प्रवास के सम्बन्ध में भी जानकारियाँ उपलब्ध कराता है । इसकी शुरुआत 1881 ई. की जनगणना से ही हो गई थी । इसमें वर्ष 1961 और 1971 में संशोधन करके कुछ और आँकडों को प्रवास के आँकडों में जोडा जाने लगा है । भारतीय जनगणना में प्रवास की गणना, जन्म स्थान और निवास स्थान के आधार पर की जाती है ।

प्रवास की धाराएँ

सामान्यतया प्रवास दो प्रकार का होता है–अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास और आन्तरिक प्रवास । आन्तरिक प्रवास में स्थानान्तरण की दिशा के आधार पर प्रवास की चार धाराएँ होती हैं– ग्राम से नगर को, ग्राम से ग्राम को, नगर से ग्राम को, नगर से नगर को । 2001 की जनगणना के अनुसार, 81.5 करोड प्रवासियों में से 9.8 करोड ने पिछले दस वर्षों में अपने निवास स्थान बदल लिए हैं । इनमें से 8.1 करोड अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासी थे । इस धारा में स्त्री प्रवासी प्रमुख थीं, जोकि अधिकांश विवाहोपरान्त प्रवासी थीं ।

प्रवास की स्थानिक भिन्नता

महाराष्ट्र में 23 लाख प्रवासी हैं, जो सभी राज्यों में सर्वाधिक है । इसके बाद क्रमशरू दिल्ली, गुजरात और हरियाणा का स्थान है । महाराष्ट्र, दिल्ली, गुजरात तथा हरियाणा जैसे कुछ ऐसे राज्य हैं, जो उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे राज्यों से प्रवासियों को आकर्षित करते हैं । इसमें उत्तर प्रदेश (26 लाख) तथा बिहार (17 लाख) के लोग अधिक उत्प्रवास करते हैं ।

कृषक असन्तोष एवं कषक (खेतिहर) आन्दोलन (**Agrarian Unrest and Peasant Movements**)

सामान्यतः असन्तोष की भावना तब उत्पन्न होती है, जब किसी व्यक्ति, वर्ग, समुदाय या समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है । यहाँ कृषक असन्तोष भी इसी अवधारणा से प्रेरित है ।

कृषक असन्तोष (**Agrarian Unrest**)

कृषक असन्तोष की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब कोई भी समाज–व्यवस्था उनको आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती है । ब्रिटिश काल में सरकार का भू–राजस्व व्यवस्था, कृषि के प्रारूपों ने कृषकों के अन्दर असन्तोष की भावना उत्पन्न की । इन असन्तोषों को उत्पन्न करने में लगान का अधिक होना, फसल नष्ट हो जाने की स्थिति में कोई रियायत न देना, व्यापारिक फसलों के उत्पादन करने हेतु दबाव डालना इत्यादि ने प्रमुख भूमिका निभाई ।

ब्रिटिश काल में भी किसानों ने अपने असन्तोष को व्यक्त किया है । 1860 ई. में बंगाल में नील की खेती करने वाले किसानों का असन्तोष आन्दोलन के रूप में व्यक्त हुआ । वर्ष 1948–49 में आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना क्षेत्र के किसानों ने आन्दोलन किया । वर्ष 1967–71 में पश्चिमी बंगाल में नक्सलवादी आन्दोलन वस्तुतः किसान आन्दोलन था । धीरे–धीरे यह आन्दोलन भारत के कई राज्यों में फैल गया ।

सामान्यतः इस कृषक असन्तोष एवं आन्दोलन में उठाए गए मुद्दे निम्नलिखित थे

- काश्तकारों एवं बँटाईदारों के पट्टेदारों की सुरक्षा ।
- ग्रामीण निर्धनों के बीच अतिरिक्त भूमि का वितरण ।
- भू-स्वामियों तथा साहूकारों द्वारा निर्धन कृषकों के आर्थिक उत्पीडन की समाप्ति ।
- कृषि श्रमिकों को उचित दिहाडी ।

कृषक आन्दोलनों (Peasant Movements)

कृषक आन्दोलनों का मूल आधार वर्गसंघर्ष की अवधारणा रही है, किन्तु यह श्रमिकों के आन्दोलनों से भिन्न है । मार्क्स ने तो कृषक वर्ग को एक निष्क्रिय वर्ग माना था, किन्तु लेनिन, माओत्से तंग ने इन्हें क्रान्ति का केन्द्र माना । विनोबा एवं जयप्रकाश नारायण के सर्वोदय एवं भूदान आन्दोलना का केन्द्र भी कृषक समुदाय ही रहा । कृषक आन्दोलनों की विस्तृत चर्चा करने से पूर्व कृषक आन्दोलन किसे कहा गया है, यह जान लेना आवश्यक है ।

कृषक आन्दोलन का अर्थ एवं परिभाषाएँ

पी. सुराना के शब्दों में, कृषक आन्दोलन, ऐसे आन्दोलनों की ओर लक्ष्य करते हैं, जिनका मूलाधार कृषि की आवश्यकताओं से सम्बन्धित होता है, जो मूलतः अपने सत्तापरक स्वामियों के अवरोध से मुक्त होने के लिए किए जाते हैं ।

श्री रामविचार पाण्डेय के अनुसार, कोई भी आन्दोलन कृषक आन्दोलन बन सकता है, यद्यपि उसका मूल उद्देश्य कृषकों के अधिकार की लडाई हो, चाहे वह कृषकों द्वारा गठित हो अथवा अन्य समूहों द्वारा ।

डॉ. तरुण मजूमदार के एक लेख में कृषक-आन्दोलन को इस तरह परिभाषित किया गया कि कृषि-कार्यों से सम्बन्धित प्रत्येक वर्ग के उत्थान तथा शोषण-मुक्ति के लिए किए गए साहसी प्रयासों को कृषक-आन्दोलन की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

बदलते अन्तर-समुदाय सम्बन्ध और हिंसा (Changing Inter-Community Relations and Violence)

समुदाय निश्चित भू-भाग में रहने वाले व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो रहस्य की भावना (समुदाय की भावना) से जुडे होते हैं और एक सामान्य संस्कृति का निर्माण कर अपने व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं । इसी तरह ग्रामीण समुदाय एक ऐसा समुदाय होता है जो कृषि पर आधारित होता है । जहाँ तक ग्रामीण एवं खेतिहर समाज का बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में अन्तर-समुदाय के सम्बन्ध का प्रश्न है, तो सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व यहाँ पर आत्मनिर्भर इकाई के रूप में ग्रामीण व्यवस्था विद्यमान थी । भारतीय व्यवस्था जजमानी प्रथा के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी तथा साथ ही अन्तर-समुदाय के साथ भी अच्छे सम्बन्ध थे ।

ब्रिटिश शासनकाल के समय में ग्रामीण अन्तर-समुदाय में बदलाव करते हुए जमींदारी व्यवस्था का प्रावधान कर दिया । इस व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि भूमि का वास्तविक मालिकाना अधिकार ग्रामीण समुदाय से जमीदार को दे दिया गया । जमींदारी व्यवस्था से ब्रिटिश शासन तथा जमीदारों का शोषण बढता गया और ग्रामीण स्तर पर एक भू-स्वामित्व वर्ग का उदय हुआ । इस प्रकार इनके शोषण के कारण ग्रामीण ऋणग्रस्तता, भूमिहीन मजदूर, कृषि का वाणिज्यीकरण आदि परिणामों के चलते अन्तर-समुदाय सम्बन्ध में बदलाव हए । गाँवों में परिवर्तन के उपरान्त धनी किसान, मध्यम किसान और निर्धन के रूप में उदय हुआ । मध्यम किसान और निर्धन किसान अवसरों की कमी के कारण ग्राम से नगरों की ओर प्रवसन बढ गया ।

शहरों में प्रवसन के उपरान्त प्रवासी मजदूर, बँधुआ मजदूर, दरिद्रीकरण, विकृषिकरण की समस्या बढ गई । इन समस्याओं के कारण कृषक असन्तोष और खेतिहर आन्दोलन का प्रारम्भ हआ । आजादी के बाद भारत में वर्ष 1952 में सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण स्तर की समस्या समाधान करने का प्रयास किया गया । पंचवर्षीय योजना के माध्यम से नियोजित विकास पर बल दिया गया । मिश्रित अर्थव्यवस्था की संकल्पना, लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना, 73वें संशोधन के माध्यम से पंचायती राज की स्थापना के साथ सरकार की लोककल्याणकारी योजना के माध्यम से समस्या समाधान का प्रयास किया गया ।

परन्तु अभी भी ग्रामीण व्यवस्था तथा उनके अन्तर-समुदाय को बेहतर बनाने के लिए समृद्धि, समावेशन, शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसरों की उपलब्धता आदि के माध्यम से ग्रामीण एवं खेतिहर समाज का समग्र विकास किया जा सकता है ।

नगरीय समाज की अवधारणा (**Concept of Urban Society**)

नगरीय समाजशास्त्र वर्तमान में समाजशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण उपशाखा है, जिसके अन्तर्गत नगरीय जीवन, जीवन स्तर, विभिन्न सामाजिक घटनाए, सामाजिक समस्याएँ, नगरीय सामाजिक क्रियाएँ सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक संरचना आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है ।

- एण्डरसन के अनुसार नगरीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत कस्बों एवं नगरों में समाज और जीवन के ढंग का अध्ययन किया जाता है ।
- बर्गल के अनुसार, नगरीय सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संस्थाओं पर नगरीय जीवन के प्रभाव एवं नगरीय जीवन के ढंग पर आधारित और इससे विकसित सभ्यताओं का अध्ययन किया जाता है ।
- हॉबहाउस के अनुसार, नगरीय समाजशास्त्र, नगर जीवन और समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन है ।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि अनेक समाजशास्त्रियों ने नगरीय जीवन और इससे सम्बन्धित विभिन्न सामाजिक समूहों को अध्ययन विषय के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है ।

नगरीकरण (Urbanisation)

नगरीकरण का तात्पर्य नगर और नगर से जुडी अनेक ऐसी विशेषताओं से है, जो ग्रामीण क्षेत्रों की विशेषताओं से बिलकुल भिन्न होती है । इस सन्दर्भ में नेल्सन एण्डरसन ने कहा है कि ‘नगरीकरण’ प्रायः बडे नगरों में केन्द्रित है और उद्योग की ओर उन्मुख है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नगरीकरण एक सामाजिक परिवर्तन की ही प्रक्रिया है, जिसमें ग्रामीण समाज धीरे-धीरे नगरीय समाज में परिवर्तित होने लगता है अर्थात नगरों की विकास की प्रक्रिया को ही नगरीकरण कहा जाता है ।

नगरीकरण की परिभाषाएँ

नगरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए अनेक विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषा दी है, जो निम्नलिखित है

- किंग्सले डेविस के अनुसार, ‘नगरीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके निर्धारण का महत्वपूर्ण आधार जनसंख्या का एक न्यूनतम स्तर, नागरिक प्रशासन तथा मुद्रा अर्थव्यवस्था है ।
- नेल्सन एण्डरसन के अनुसार, ‘नगरीकरण का तात्पर्य केवल गाँवों के लोगों को शहरों की ओर बढना अथवा कृषि को छोडकर व्यापार या नौकरी करना ही नहीं है, बल्कि इस प्रक्रिया में व्यक्तियों के विचारों, व्यवहारों, मनोवृत्तियों और मूल्यों में होने वाला परिवर्तन भी सम्मिलित है ।’

नगरवाद (Urbanism)

नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कोई भी स्थान नगरीय विशेषताओं को धारण करता है, जबकि नगरवाद नगरीय जीवन ढंग को व्यक्त करता है । वास्तव में, नगरवाद व्यक्ति की एक ऐसी जीवन शैली की पद्धति बन गया है, जो नगरीय जीवन में अनेक जटिल समस्याओं को उत्पन्न कर देता है ।

नगरवाद के सम्बन्ध में दी गई परिभाषाएँ निम्नांकित है

- विरेन्द्र सिंह के अनुसार, नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे कोई स्थान नगरीय विशेषताओं को धारण करता है, जबकि नगरवाद जीवन ढंग को व्यक्त करता है । नगरीय जीवन के ढंग का निर्धारण व व्यवहार के ढंग, संगठन के प्रकार, मूल्य तथा प्रतिमान निश्चित करते है, जो पूर्व निश्चित है ।
- वीन और कारपेण्टर के अनुसार, नगरवाद का प्रयोग हम नगर निवास की घटना को पहचानने के लिए करते है । नगरीकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन शैली, जो अद्भुत रूप से नगर निवास से जुडी है, को पहचानने के लिए करते है ।
- बर्जल ने नगरवाद को स्पष्ट करते हए कहा कि नगरीकरण एक प्रक्रिया के रूप में और नगरवाद एक दशा के रूप में या परिस्थितियों के पुंज के रूप में समझे जाएँगे ।
- प्रो. राव के अनुसार, नगरवाद जहाँ एक प्रक्रिया है, वहीं यह जीवन ढंग को भी व्यक्त करता है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरवाद नगरों में रहने वाले व्यक्ति की विशिष्ट जीवन शैली की विशेषताओं को व्यक्त करता है ।

नगरीयता (**Urbanity**)

नगरीयता समाजशास्त्र की मूल अवधारणाओं में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, लेकिन नगरीयता की अवधारणा के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों के बीच मतभेद पाया जाता है । इसलिए सभी विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से स्पष्ट करने का प्रयास किया है । अतः सर्वप्रथम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई नगरीयता की परिभाषाओं का विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

- क्वीन एवं कारपेण्टर ने नगरीयता को परिभाषित करते हुए लिखा है, नगरीयता का प्रयोग हम नगरीय निवास की प्रधानता के रूप में पहचानते हैं ।
- नेल्सन एण्डरसन ने लिखा है, ष्नगरीयता को जीवन के ढंग के रूप में परिभाषित किया है ।
- वर्थ ने लिखा है, नगरीयता, जीवन का एक ढंग है ।

नगरीयता की विशेषताएँ

नगरीयता की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

- लुईस वर्थ के अनुसार, नगरीय जीवन में स्थिरता का अभाव होता है । वह प्रायरू नए सम्बन्धों को बनाता है तथा पुराने सम्बन्धों को तोडता है और इस तरह से नगरीय व्यक्तियों में स्थिरता का अभाव पाया जाता है । नगरीय व्यक्तियों में भौतिक स्वार्थों की पूर्ति की भावना विशेष रूप से पाई जाती है । अतः एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ तभी तक अपना सम्बन्ध बनाए रखता है, जब तक उसके स्वार्थों की पूर्ति नहीं होती है । स्वार्थो की पूर्ति के बाद वह अपने पुराने सम्बन्धों को तोड लेता है ।
- वर्थ ने नगरीय जीवन के ढंग का दूसरा लक्षण व्यवहारों में कृत्रिमता या दिखावा बताया है । इसका अर्थ है कि नगरीय व्यक्तियों का व्यवहार दिखावटीपन लिए हुए होता है ।
- वर्थ के अनुसार, नगरीय जीवन के ढंग की तीसरी विशेषता अपरिचिता है । इसका अर्थ है कि नगरीयता से परिपूर्ण समूहों में जान-पहचान या परस्पर एक-दूसरे से परिचय का अभाव पाया जाता है । नगरों की जनसंख्या अधिक होती है । फलतः सभी व्यक्ति एक-दूसरे से परिचित नहीं हो पाते हैं ।
- वर्थ ने चौथी विशेषता दूसरों पर अत्यधिक निर्भरता बताई है । नगरवादी बहुत मायनों (अर्थों) में एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं । दुर्खीम ने अपने श्रम विभाजन सिद्धान्त में इस तथ्य की पुष्टि की है कि नगरीय लोगों में शरीर के अंगों की भाँति निर्भरता पाई जाती है ।

महानगर (**Mega-Cities**)

नगरों के वृहत्तर रूप को महानगर कहा जाता है । महानगर और शहरी जीवन की अवधारणा का जन्म शिकागो स्कूल में हुआ, जिसे लुईस वर्थ के निबन्ध 'अर्बनेडम एज ए वे ऑफ लाइफ में सर्वप्रथम स्पष्ट किया गया । लुईस ने शहर को सामाजिक रूप से बहुजातीय और भिन्न व्यक्तियों के बडे सघन और स्थायी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया है । महानगरीकरण का रुझान त्वरित रूप से विकसित होने का कारण समुदायों के उत्थान, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूपान्तरण का कारण बनता है ।

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने महानगर की परिभाषा निम्न प्रकार दी है

- बर्गल ने राजकीय दृष्टिकोण से महानगर की परिभाषा दी है जिसे एक चार्टर जो उच्च अधिकारी द्वारा स्वीकृत किया गया है, के द्वारा न्यायिक रूप से नगर परिभाषित किया गया है ।
- वर्नर जोम्बार्ट के अनुसार, महानगर को भीड-भाड वाला वह स्थान बताया है, जहाँ पर लोग एक-दूसरे से अनभिज्ञ होते है ।
- पार्क और मैकेंजी के अनुसार, महानगर का अर्थ किसी स्थान पर स्थित ऐसी संगठित इकाई से है, जिसके विकास के अपने पृथक् नियम है ।
- जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण से नगर को परिभाषित किया गया है, जिसे निम्नलिखित वर्गीकरण के अन्तर्गत रखा गया है

5000 से 10000 जनसंख्या	छोटे शहर (कस्बा)
10000 से 20000 जनसंख्या	शहर
20000 से 50000 जनंसख्या	बडे शहर
50000 से 100000 जनसंख्या	नगर
100000 से 1000000 जनंसख्या	महानगर
1000000 से अधिक जनसंख्या	मेट्रोपालिटन नगर

इस प्रकार किसी स्थान विशेष को नगर कहने के लिए निर्धारित जनसंख्या का आधार लिया जाता है । सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री ममफोर्ड ने अपनी पुस्तक दी कल्चर ऑफ द सिटीज में नगर और महानगर के सन्दर्भ में परिभाषा इस प्रकार दी है अपने सम्पूर्ण अर्थ में शहर एक भौगोलिक तन्तुजाल आर्थिक संगठन, सामाजिक कार्य और सामूहिक एकता का प्रतीक होता है ।

कस्बा (Town)

कस्बा गाँव एवं शहर (नगर) के बीच की स्थिति को दर्शाता है । यहाँ की जनसंख्या कृषि कार्य के साथ लघु एवं कुटीर उद्योग तथा अन्य व्यवसाय से जडी होती है । वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल 7986 कस्बे है । जब कस्बे की जनसंख्या का आकार एवं घनत्व दोनों बढ जाता है, तब वह शहर या नगर के नाम से जाना जाता है ।

कस्बे की परिभाषाएँ

ऐसा जननिवास स्थान जहाँ गाँव तथा नगर दोनों की विशेषताएँ विद्यमान रहती है, कस्बा कहलाता है । कस्बा, ग्रामीण जीवन से, जीवन स्तर विषय आधार पर भिन्न होता है । ऐसे गाँव जिसमें नगरीय जीवन की समस्त सुविधाएँ व गतिशीलता पाई जाती है और उनका जीवन स्तर नगर शहरों से निम्न होता है । ऐसे स्थान न तो गाँव की सीमा में आते है, न ही शहरों की सीमा रेखा में । इन्हें हम कस्बे के रूप में जानते है ।

- एच. एम. मेयर और जी. एफ. कोहेन ने लिखा है कि जब कस्बा ग्रामीण क्षेत्र की दैनिक व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है; जैसे–साहित्य, व्यापार, शिक्षा तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों की गतिविधियाँ जो परस्पर सम्बन्धित रहते हुए एक स्थायी और घनिष्ठ संगठन के लिए प्रयत्न करें, तो वह स्थान कस्बे की विशेषताओं को धारण कर लेता है ।
- बर्गल नामक समाजशास्त्री कस्बे की जनसंख्या सम्बन्धी विवाद (अलग–अलग जनसंख्या में आधार पर कस्बों को लेकर विवाद है) से हटकर कस्बे क्षेत्र में नगरपालिका का होना आवश्यक माना है । उनका मानना है कि नगरपालिका सीमा में स्थायी निवास व्यवस्था होनी चाहिए तथा सभी आय वर्ग के लोगों का निवास स्थान होना चाहिए ।

इस तरह औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रवृत्तियों ने कस्बा विषयक विचारधारा को जन्म दिया । जब व्यक्ति ने उद्योग स्थापित किए, तब उद्योगों से बने माल को नगरों या कस्बों में बेचा जाने लगा, जिससे ना के समीप बसे गाँवों की संस्कृति प्रभावित हुई और उसमें भी नगरीय की कुछ सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं । ऐसी अवस्था में कस्बे का जन्म हुआ । यहाँ पर पारस्परिक सम्बन्धों का स्वरूप गाँव की अपेक्षा औपचारिक होता है ।

शहर या नगर (**City**)

वह क्षेत्र जहाँ की 50% से अधिक जनसंख्या अपनी जीविकोपार्जन के लिए गैर–कृषि कार्य से जडी होती है, उसे शहर या नगर की संज्ञा दी जाती है तथा उसके अध्ययन को नगरीय समाजशास्त्र कहा जाता है ।

अमेरिकी समाजशास्त्री रहबर्ट पार्क को शहरी समाजशास्त्र (नगरीय) का जनक कहा जाता है । बर्गेस के साथ मिलकर पार्क ने एक किताब लिखी । द अर्बन कम्युनिटी इसे नगरीय या शहरी समाजशास्त्र की प्रथम पाठ्यपुस्तक माना जाता है ।

सामान्य रूप से जब नगर की जनसंख्या में अधिक वृद्धि होती है. तो केन्द्र में बसने वाली जनसंख्या शहर की बाहरी सीमा पर बसने लगती है । यह एक ग्रामीण क्षेत्र होता है, लेकिन नगर के लोगों के बसने के कारण इसे उपनगर कहा जाता है और यह नगरीय विशेषता को दर्शाने लगता है । उपनगर से जुडने के साथ शहर या नगर महानगर (Metropolis) में परिवर्तित हो जाता है । इसे महानगरीय शहर (Metropolitan City) भी कहा जाता है ।

नगर या शहर की परिभाषाएँ

- लईस वर्थ के अनुसार, नगरीयता या शहरीयता एक जीवन शैली है ।
- किंग्सले डेविड के अनुसार, नगर या शहर एक ऐसा समदाय है, जो सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विभिन्नताओं से युक्त होता है तथा जो कृतिमता, व्यक्तिवादी, प्रतिस्पर्धा तथा घनी जनसंख्या के कारण नियन्त्रण के औपचारिक साधनों के द्वारा संगठित रहता है ।
- विलकहक्स के अनुसार, नगर या शहर का तात्पर्य उस प्रदेश से है जहाँ प्रति वर्ग मील जनसंख्या का घनत्व एक हजार व्यक्तियों से अधिक हो तथा व्यावहारिक रूप से कृषि न होती हो ।
- समाजशास्त्र कोश के अनुसार, नगर अत्यधिक वृहत् आकार तथा जनसंख्यात्मक घनत्व वाला एक ऐसा समुदाय है, जिसके निवासी विविध एवं ऐसे विशिष्ट कार्यों में संलग्न रहते हैं जिनकी प्रकृति सामान्यतः गैर-कृषि प्रकार की होती है ।

अतः हम उस मानव निवास क्षेत्र को नगर क्षेत्र कहेंगे जहाँ पर निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती है

शहर या नगर की विशेषताएँ

शहर या नगर की निम्नलिखित विशेषताएँ है

- नगर में गैर-कृषि कार्य या व्यवसाय होता है ।
- नगर व्यापारिक स्थल होते है ।
- नगरों में जनसंख्या का घनत्व अत्यधिक होता है ।
- नगरों में सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप औपचारिक होता है ।
- नगरों में व्यक्तिवादिता की प्रधानता होती है तथा साथ ही प्रत्येक कार्य में प्रतियोगिता की भावना विद्यमान रहती है ।
- यहां पर जन नियन्त्रण नैतिक मल्यों की अपेक्षा कानूनी सत्ता द्वारा अधिक होता है ।
- परम्परा के स्थान पर तार्किकता का महत्व अधिक होता है ।
- शिक्षा, यातायात, संचार आदि की प्रधानता होती है ।
- भौतिक विनाश के प्रति लोगों में सहजता होती है ।

प्रतिवेश या आस-पडोस (**Neighbourhood**)

पडोस या प्रतिवेश शब्द का सामान्य अर्थ पारम्परिक सामयिक आवासीय विकास के सन्दर्भ में लिया जाता है । सर्वप्रथम क्लेरेंस ऐ पेरी ने वर्ष 1929 में प्रतिवेशी इकाई (Neighbourhood Unit) शब्द का उपयोग किया था, जिसके पश्चात् से यह नगरों के नियोजन का अहम हिस्सा बन गया है । पेरी ने अपनी इस अवधारणा को (रिजिनल प्लान ऑफ न्यूयॉर्क एण्ड इट्स एनवर्स) नाम पुस्तक में स्पष्ट किया । सामान्यतरू पडोस का अर्थ नगरों से सटे उपभागों और ग्रामीण क्षेत्रों से लगाया जा सकता है । साधारण तौर पर इसे इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि प्रतिवेश किसी नगर के पडोस का वह स्थान है, जहाँ लोग रहते है ।

लेविस ममफोर्ड ने प्रतिवेश को ऐसा प्राकृतिक तथ्य माना है, जो तब अस्तित्व में आता है जब कोई जनसमूह किसी क्षेत्र में रहने लगता है ।

अर्नोल्ड विटिक ने प्रतिवेश को नियोजित और एकीकृत नगरीय क्षेत्र के तौर पर परिभाषित किया है जो विस्तृत समुदाय का हिस्सा होता है और जहाँ आवासीय क्षेत्र, एक या अधिक स्कूल, बाजार, धार्मिक भवन, खुले स्थान और अनेक बार बेहतर सेवा-सुविधाएँ प्राप्त होती है ।

समुदाय से सम्बन्धित विद्वानों ने पडोस, परिवार और अपने आस-पास के समुदाय का संग्रह रूप में वर्णन किया है । पडोस के लोग एक समुदाय के रूप में एक सामान्य भू-भाग में रहते है । मुख्यतः पडोस की अवधारणा का निम्न मध्यवर्गीय अथवा अच्छी पारिश्रमिक पाने वाले मजदूर वर्ग के आस-पास की निवास के इकाई के रूप में भी वर्णन किया जाता है । पडोस को समाजशास्त्र में एक अनिवार्य सामुदायिक तत्व के रूप में वर्णित किया गया है ।

पोलैण्ड के दो अमेरिकी प्रवासी विद्वान् डब्ल्यू. आई. थहमस एवं लोशिए नेनेकी ने पोलैण्ड के उन किसानों और लोगों का अध्ययन किया, जो यूरोप और अमेरिका में जाकर बस गए । यह अध्ययन समाजशास्त्र में एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ । इन विद्वानों ने १द पोलिस पीजेण्ट इन यूरोप एण्ड अमेरिका नामक पुस्तक में पडोस के विविध पक्षों की चर्चा की । रॉबर्ट एस लिण्ड ने श्मिडिल टाउन नामक पुस्तक में पडोस को लेकर व्यापक चर्चा की है ।

पडोस समुदाय आकार की दृष्टि से सबसे छोटा होता है । एक छोटे स्थान पर जब बहुत से परिवार के लोग साथ रहते हों तथा सामान्यतः व्यवसाय भी एक जैसे करते हों, तो उनमें आपसी लगाव, व्यवहार तथा भौतिक निकटता हो जाती है । पडोस के लोग एक-दूसरे को जानते है, उनका जीवन संगठित होता है । इस तरह से पडोस में रहने वाले लोग । सामान्यतरू निम्न मध्यवर्ग या मजदूर वर्ग से सम्बन्धित होते है । ये अपनी मेहनत से छोटी-छोटी पूँजी एकत्रित करते है, ताकि अपने जीवन को व्यवस्थित कर सकें । पडोस में सामूहिकता होती है । ये छोटी-छोटी खुशियों को बाँटकर और दुःख में एकसाथ खडे होकर अपनी सामूहिकता को प्रकट करते है । इस प्रकार से पडोस की अवधारणा सामूहिकता के सन्दर्भ में प्रचलित है, जो सहयोग और आपसी सम्बन्धों के आधार पर जुडी होती है ।

गन्दी बस्तियाँ (Slums)

वर्तमान में औद्योगिक केन्द्रों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हुई है एवं उसी के अनुपात में मकानों का निर्माण न हो पाने के कारण वहाँ अनेक गन्दी बस्तियाँ बन गई है । विश्व के प्रत्येक प्रमुख नगर में नगर के पाँचवें भाग से लेकर आधे भाग तक की जनसंख्या गन्दी बस्तियों अथवा उसी के समान दशाओं वाले मकानों में रहती है । नगरों की कैंसर के समान इस वृद्धि को विद्वानों ने 'पत्थर का रेगिस्तान, व्याधिकी नगर, नरक की संक्षिप्त रूपरेखा आदि कहकर पुकारा है ।

गन्दी बस्तियों में मकान अन्धेरे व सीलन युक्त होते है । इनमें शौचालय, स्नानघर, पानी, बिजली, हवा एवं रोशनी की पर्याप्त सुविधाओं का अभाव पाया जाता है । साथ ही इनमें मच्छर, खटमल, छिपकलियों, चूहों और बीमारी के कीटाणुओं की बहुलता पाई जाती है । यह निवास की अर्द्ध मानवीय दशा है और यह मानवीय जाति की शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से कमजोर पीढी को जन्म दे रही है ।

मध्यम वर्ग (Middle Class)

1770 के दशक में पहली बार अंग्रेजी शब्दकोश में मध्यम वर्गीय अवधारणा शामिल हुई । उस समय औद्योगिक क्रान्ति के कारण यूरोप में अभिजात वर्ग से हटकर पेशेवर वर्ग डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, वकील, व्यापारी आदि वर्गों का उदय हुआ, जिसे मध्यम वर्ग कहा गया । इस तरह से मध्यम वर्ग में वे लोग शामिल होते हैं, जो समाजीकरण के मध्य में हैं ।

- डेनिस गिलबर्ट और जे. हिक्की जैसे समाजशास्त्री मध्यम वर्ग को दो उपवर्ग समूह में विभाजित करते हैं । उच्च मध्यम वर्ग (सफेदपोश पेशवर) इन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त होती है, निम्न मध्यम वर्ग (सफेदपोश कर्मचारी) इन्हें उच्च मध्यम वर्ग की तुलना में कम स्वायत्तता, कम (निम्न) शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न वैयक्तिक आय एवं निम्न प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।
- विलियम थहमस जैसे समाजशास्त्रियों ने वर्ग मॉडल प्रस्तुत किया, जिसमें समाज को उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग में वर्गीकरण किया । अर्थशास्त्री माइकल ड्वेग वर्ग (उच्च, मध्य, निम्न) की परिभाषा जीवन शैली आय के साथ-साथ समाज में शक्ति के रूप में देते हैं ।

नगरीय आन्दोलन और हिंसा (Urban Movement and Violence)

शहरीकरण की तेज गति ने विभिन्न देशों में हिंसात्मक गतिविधियों और असुरक्षा की भावना को भी बढाया है । पूरे विश्व में आधी से अधिक जनसंख्या अब शहरों में रहती है और जनसंख्या का बडा भाग शहरों में मिलने वाले अवसरों से लाभान्वित होता है, लेकिन फिर भी कई लोग शिक्षा, श्रम, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में आगे बढ पाने में बाधाओं का सामना करते हैं । सामाजिक अन्याय, उद्देश्यों का अभाव, अवसरों की कमी आदि पक्ष निर्धनता को बढावा देते हैं । इन सबसे एक ऐसा वातावरण बनता है, जो हिंसात्मक गतिविधियों को बढावा देने की वजह बन जाता है ।

विशेषतः उन स्थानों पर जहाँ सामाजिक-आर्थिक बेहतरी के बहुत सीमित अवसर हों, वहाँ नगरीय क्षेत्रों में विभाजन उभरता है जो सामुदायिक चहारदीवारियों, बस्तियों और गरीब क्षेत्रों के रूप में स्पष्ट परिलक्षित होता है । इस तरह की परिस्थितियाँ आपराधिक गतिविधियों और नेटवर्क को बढावा देती हैं ।

नगरीय आन्दोलन और हिंसा की अवधारणा

हिंसा की व्यापक संकल्पना घटनाओं की विस्तृत श्रृंखला को सामने लाती है । ढाँचागत हिंसा में समाज के उपेक्षित भाग की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बाधाएँ मुख्य कारक हैं, जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थानों की नीतियों के कारण से उत्पन्न होती है । शेपर, ह्यूज और बोर्जीज जैसे समाजशास्त्री इस हिंसात्मक गतिविधि के पीछे गरीबी, भूख सामाजिक बहिष्कार और असम्मान जैसे तत्व को कारण मानते हैं ।

हिंसा को सामान्यतः दूसरों को क्षति पहुँचाने वाले शारीरिक बल के रूप में परिभाषित किया जाता है । व्यापक परिभाषाओं में मनोवैज्ञानिक और भौतिक क्षति को भी शामिल किया जाता है । अधिकतर परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि हिंसा वस्तुतः एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी विशेष लाभ या वस्तु को पाने के उद्देश्य से शक्ति के दुरुपयोग को मान्यता दी जाती है । इस प्रकार समाज में शक्तियों की असमानताओं के चलते हिंसात्मक रूप को बढावा मिलता है, जिससे समाज और राज्य के बीच विवादास्पद मुद्दों का जन्म हो जाता है ।